# १) अर्जुनविषादयोगः

**धृष्ट्रराष्ट्र उवाच**

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में हुये, युद्ध करने को एकत्रित।

मेरे पुत्रों पांडवों ने संजय, क्या किया रण निमित्त ॥१॥

**सञ्जय उवाच**

दुर्योधन देख पांडव सैन्य, व्यूह रचना से युक्त।

आचार्य द्रोण निकट जा कर, तब बोला वचन उक्त ॥२॥

देखें आचार्य पाण्डुपुत्र सैन्य, व्यूह रचना युक्त महान।

द्रुपदराज पुत्र विरचित, आपका शिष्य बुद्धिमान ॥३॥

सेना में अनेक शूरवीर, महाधनुर्धर भीम अर्जुन समान।

सात्यकि और विराट, राजा द्रुपद महारथी महान ॥४॥

धृष्ट्रकेतु-चेकितान, एवं काशिराज वीर्यवान।

कुन्तिभोज-पुरुजित, एवं नरश्रेष्ठ शैव्य महान ॥५॥

पराक्रमी युधामन्यु, एवं उत्तमौजा वीर्यवान।

अभिमन्यु-द्रौपदीपुत्र, ये सभी महारथी महान ॥६॥

ब्राह्मण श्रेष्ठ हमारे भी, प्रधान जन जताता हूँ।

सेनापति मेरी सेना के, उनके नाम बताता हूँ ॥७॥

आप एवं समरजयी कृपाचार्य, भीष्मदेव एवं कर्ण।

अश्वत्थामा एवं जयद्रथ , सोमदत्त पुत्र एवं विकर्ण ॥८॥

और भी अनेक वीर, मेरे लिए होवें प्राण हीन।

नाना शस्त्रों से सजे, युद्ध कला में प्रवीण ॥९॥

असीमित है बल हमारा, पितामह भीष्म द्वारा रक्षित।

सीमित बल पाण्डवों का, महाबली भीम रक्षित ॥१०॥

समस्त व्यूह प्रवेश द्वारों पर, निज विभागानुसार स्थित।

रक्षा करें भीष्म पितामह की, आप सब योद्धा मिलित ॥११॥

दुर्योधन का हर्ष बढ़ाया, भीष्म कुरु वृद्ध प्रतापवान।

ऊँचे स्वर से सिंहनाद कर, किया शंख स्वर महान ॥१२॥

तब शंख-भेरी-पणव, गोमुख और आनक।

एक साथ ही बज उठे, रण बाद्य हुआ प्रबल घातक ॥१३॥

तब श्वेत घोड़ों से युक्त, वृहत रूप में अवस्थित।

श्रीकृष्ण एवं अर्जुन ने भी, किये दो सुन्दर शंख गुंजित ॥१४॥

हृषिकेश कृष्ण ने पाञ्चजन्य, धनंजय अर्जुन ने देवदत्त।

भयंकर कर्म भीमसेन ने, बजाया पौण्ड्र महाशंख ॥१५॥

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने, बजाया शंख अनंतविजय।

नकुल और सहदेव ने, बजाया शंख सुघोष-मणिपुष्पक ॥१६॥

महाधनुर्धर काशिराज, एवं महारथी शिखंडी।

धृष्ट्द्युम्न एवं राजा विराट, और अपराजित सात्यकि ॥१७॥

हे राजा धृतराष्ट्र! द्रुपद ने, पाँचों द्रौपदी पुत्रों ने।

सुभद्रापुत्र महावीर अभिमन्यु ने, अलग अलग शंख बजाये ॥१८॥

उस भयंकर घोष से, हुये धरती आकाश गुंजायमान।

धृष्ट्रराष्ट्र पुत्रों के, ह्रदय हुये कंपायमान ॥१९॥

तब कपिध्यज अर्जुन देख, धृष्ट्रराष्ट्र पुत्र युद्धार्थ स्थित।

हुये अर्जुन शस्त्र चलाने को, उठा धनुष अवस्थित ॥२०॥

**अर्जुन उवाच**

हे धृष्ट्रराष्ट्र! तब अर्जुन बोले, हृषिकेश कृष्ण को पुकार।

दोनों सेना बीच हे अच्युत, तुम चलो रथ कर तैयार ॥२१॥

तब तक मैं करूँ निरीक्षण, कौन वीर युद्ध कामार्थ आये।

कौन वीर संग युद्ध करूँ मैं, जो यह युद्ध व्यापार लाये ॥२२॥

इस युद्ध में दुर्बुद्धि दुर्योधन, का प्रिय कार्य करने इच्छुक।

देखूं आये उन राजा को, युद्ध करने को प्रस्तुत ॥२३॥

**सञ्जय उवाच**

हे धृष्ट्रराष्ट्र! हृषिकेश कृष्ण, जितनिद्र अर्जुन से हो कथित।

दोनों सेनाओं के बीच, उत्तम रथ करके स्थापित ॥२४॥

हे पृथापुत्र अर्जुन! बोले कृष्ण, देखो भीष्मदेव द्रोण।

अन्य सभी राजाओं को, सारे कौरव जो एकत्रित ॥२५॥

देखे अर्जुन दोनों सेना में, चाचा, दादा, आचार्य।

मामा भाई पुत्र पौत्र, बन्धु ससुर मित्र अवस्थित ॥२६॥

उस अर्जुन ने देखा, सब बंधुओं को अवस्थित।

अत्यंत कृपा से अभिभूत, दुखी मन यह वचन कथित ॥२७॥

**अर्जुन उवाच**

इन स्वजनों को देख, युद्ध अभिलाषा से अवस्थित।

सूख रहा मुख मेरा, सब अंग हो रहे दुखित ॥२८॥

शरीर में हो रहा रोमांच, हो रहा मैं कंपायमान।

जल रहा चर्म मेरा, हो रहा गांडीव गिरायमान ॥२९॥

खड़ा रहने में असमर्थ, घूम सा रहा मेरा मन।

देख रहा मैं केशव! अनेक विपरीत अशुभ लक्षण ॥३०॥

युद्ध में स्वजन वध करके, न कोई मंगल देखता।

न विजय चाहता हे कृष्ण, न राज्य सुख ही माँगता ॥३१॥

हमें राज्य से गोविन्द, क्या प्रयोजन भोग जीवन से।

जिन लोगों के लिए हम, राज सुख भोग आशा करते ॥३२॥

वे सभी आचार्य पितृगण, पुत्रसमूह एवं पितामह।

खड़े हुये युद्धक्षेत्र में, छोड़ जीवन धन की आशा ॥३३॥

मातुल-ससुर-पौत्र, साले-कुटुम्बी आदि ।॥३४॥

मुझे मारें तो भी मधुसूदन, न उन्हें मारना चाहता।

केवल पृथ्वी ही क्या, तीन लोक राज्य ना चाहता ॥३५॥

धृष्ट्रराष्ट्र पुत्रों का वध कर, जनार्दन हम क्या सुख पायेंगे।

इन आततायियों की हत्या कर, पाप के भागी कहलायेंगे ॥३६॥

हम नहीं योग्य बान्धव संग, धृष्ट्रराष्ट्र पुत्र हत्या करने के।

कैसे हम सुखी होंगे माधव, निज संबंधी हनन करके ॥३७॥

यद्यपि लोभ में अंधे, ये धृष्ट्रराष्ट्र पुत्र न देखते।

कुलनाशकारी दोष, बन्धु हत्या पाप से न चेतते ॥३८॥

हम क्यों न करें विचार, इस पाप से निवृत होने को।

सब देख सुन कर जनार्दन, कुलश्रय से उत्पन्न दोषों को ॥३९॥

कुल नाश होने से, सनातन कुलधर्म नाश होता।

कुलधर्म नाश होने से, पाप समस्त कुल दबोच लेता ॥४०॥

कुल अधर्म प्रभाव से कृष्ण, कुल स्त्रियाँ दूषित होतीं।

स्त्रियाँ दूषित होने से वार्ष्णेय, वर्ण संकर संतान होती ॥४१॥

वर्णसंकर कुलनाशकारी, कुल नरक प्राप्ति हेतु होते।

इनके श्राद्ध-तर्पण लुप्त होकर, पितर पतन हेतु होते ॥४२॥

कुलनाशकारियों के इन, वर्णसंकर कारक दोषों से।

सनातन जातिधर्म, एवं कुलधर्म नष्ट होते ॥४३॥

मनुष्यों का हे जनार्दन, कुलधर्म नष्ट होने से।

निश्चय नरक वास होता, यह शास्त्रों में सुना ॥४४॥

हाय कैसा दुर्देव यह, हम महा पाप कर्म उद्यत हुये।

राज प्राप्ति सुख आशा से, स्वजन हत्या सन्नद्ध हुये ॥४५॥

निज रक्षा प्रयत्न न करने, वाले मुझ निहत्थे को।

शस्त्रधारी कौरव युद्ध में मारें, मुझे अधिक कल्याणकर हो ॥४६॥

**सञ्जय उवाच**

यह कह कर अर्जुन युद्धक्षेत्र में, रथ के पीछे बैठ गये।

बाण सहित धनुष छोड़कर, शोकाकुल चित्त से रहे ॥४७॥

**॥इति प्रथमोऽध्यायः॥**

**हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत्**

# २) सांख्ययोगः

**सञ्जय उवाच**

इस प्रकार दुखपूर्ण, लिये आँसू भरे नयन।

करुणापूर्ण अर्जुन से, मधुसूदन बोले यह वचन ॥१॥

**श्रीभगवान उवाच**

न आर्यों के योग्य, स्वर्गप्राप्ति विरोधी।

निन्दनीय यह मोह बुद्धि, अर्जुन कहाँ तुम्हे मिली ॥२॥

न कायर बनो अर्जुन, यह तुम्हारे योग्य नहीं।

ह्रदय की दुर्बलता छोड़, परन्तप उठो अभी ॥३॥

**अर्जुन उवाच**

हे अरिमर्दन कृष्ण, पूजनीय भीष्म द्रोण संग।

अपने इन बाणों से, करूँ युद्ध किस ढंग ॥४॥

गुरुजन न हत्या कर, भिक्षान्न खाना कल्याणकर।

रक्त सने काम अर्थ, करूँ क्या मैं भोगकर ॥५॥

न जानते क्या श्रेयस्कर, हम जीतें अथवा हारें।

जिन्हे मार मरना हितकर, वे कौरव खड़े सामने ॥६॥

अज्ञान कायरता दोष से, स्वभाव मेरा ढँक रहा।

धर्मविषय में चित्त, मोहित मेरा हो रहा।

जो मार्ग हो कल्याणकर, सो निश्चित कर बताओ।

शिष्य हूँ मैं तुम्हारा, शरणागत को मार्ग दिखाओ ॥७॥

पा धरा का निष्कंटक राज, एवं स्वर्ग साम्राज्य।

जो इन्द्रिय शोषक शोक, हरे न देखता उपाय ॥८॥

यूँ परंतप अर्जुन, कह हृषिकेश गोविन्द से।

न मैं करूँगा युद्ध!, कह मौन हो रहे ॥९॥

**सञ्जय उवाच**

तब श्रीकृष्ण ने, दोनों सेना बीच खड़े।

अत्यंत दुखित अर्जुन से, मानो हँसकर वचन कहे ॥१०॥

**श्रीभगवान उवाच**

शोक अयोग्य हेतु शोकाकुल, पंडित सम वचन बोल रहे।

गत प्राण या जीवित हेतु, न ज्ञानी कभी शोक करे ॥११॥

मिथ्या कि अब से पहले, मैं तुम ये राजा नहीं रहे।

न ऐसा कि अब के बाद, सब नष्ट हो चले ॥१२॥

देही ज्यों देह में बचपन, यौवन जरा भोगता।

अन्य देह ग्रहण एक अवस्था, जान न ज्ञानी मोह करता ॥१३॥

इन्द्रिय विषय संयोग से, गर्मी-सर्दी सुख-दुख प्रतीत होते।

यह आते नष्ट होते, हे अर्जुन! तुम उन्हें सहो ॥१४॥

यह शीतोष्णादि विषय जिस, धीर को व्यथित न कर पाते।

सुख दुख में समान हे पुरुषश्रेष्ठ, ये ना आनंदामृत पाते ॥१५॥

असत् वस्तु का अस्तित्व, न सत वस्तु का अभाव है।

दोनों का स्वरुप देखना, तत्वज्ञानी का स्वभाव है ॥१६॥

जिससे यह संसार व्याप्त, उसे नित्य अविनाशी जान।

इस नित्य अव्यय का, न कोई कर पाता विनाश ॥१७॥

नित्य अविनाशी देही के, सब शरीर नश्वर होते।

शास्त्रों में यह बात सुनी, हे अर्जुन! तुम युद्ध करो ॥१८॥

इस देही को मारक-मृत, मानते वे दो ही न जानते।

देही न हनन करता, न कभी हनन होता ॥१९॥

न जन्मता न मरता, न समूल नष्ट होता।

अजर अमर सनातन देही, देह नष्ट हुये न हत होता ॥२०॥

इस देही को जो नित्य, अविनाशी अव्यय जानता।

वह कैसे हे पार्थ!, किसका वध करता कराता ॥२१॥

मनुष्य जीर्ण वस्त्र त्याग ज्यों, नये वस्त्र धारण करता।

शरीरी जीर्ण शरीर त्याग, नया शरीर धारण करता ॥२२॥

शस्त्र से न आत्मा कटती, अग्नि न जला पाती।

जल न गीला करता, वायु न सूखा पाती ॥२३॥

यह आत्मा न काटा, जलाया, सुखाया जाता।

यह सदा नित्य, स्थिर, सर्वव्यापी, निश्चल रहता ॥२४॥

वाणी से अव्यक्त, न मन से हो विचार।

विकार रहित आत्मा पर, न करो शोक विचार ॥२५॥

जो इस आत्मा को, उत्त्पन्न मरणशील समझते हो।

तो भी हे महाबाहु अर्जुन, तुम क्यों शोक करते हो ॥२६॥

जन्मा सो अवश्य मरे, जन्म मृत का निश्चित।

इस अवश्यंभावी विषय में, फिर तुम क्यों चिंतित ॥२७॥

प्राणी शरीर सृष्टि आरंभ में, अव्यक्त से व्यक्त हुये।

प्रलय बाद होंगे अव्यक्त, तुम क्यों चिंतामग्न हुये ॥२८॥

कोई आश्चर्य से देखता, कोई आत्मा अलौकिक बताता।

कोई आश्चर्य से सुनता, कोई सुन कर भी न जान पाता ॥२९॥

आत्मा सब शरीरों में, अर्जुन सदा अवध्य है।

किसी प्राणी निधन पर, शोक करना न उचित है ॥३०॥

निज क्षत्रिय धर्म देख, न विचलित होना शोभाप्रद।

धर्मयुद्ध अतिरिक्त कुछ भी, न क्षत्रिय को कल्याणकर ॥३१॥

स्वयं प्राप्त हे अर्जुन, खुले स्वर्गद्वार समान।

ऐसा धर्मयुद्ध पाते, केवल क्षत्रिय भाग्यवान ॥३२॥

और यदि तुम अर्जुन, यह धर्मयुद्ध न करते।

निज धर्म यश खोकर, पाप के भागी बनते ॥३३॥

फिर दीर्घकाल तक, निंदा करेंगे सब तुम्हारी।

आदरणीय जन के लिये, निन्दा मृत्यु से कष्टकारी ॥३४॥

कौरव महारथी समझेंगे, तुम भयात युद्ध विरत हुये।

जिन बीच सम्मानित थे, उन बीच तुच्छ हुये ॥३५॥

शत्रुजन भी करेंगे, तुम्हारे बल की निंदा।

अपमानजनक बातें कहेंगे, इससे दुखकर और क्या ॥३६॥

रण मृत्यु पर स्वर्ग, विजय पर पृथ्वी राज।

रण को हे कौन्तेय, उठो कर निश्चय ॥३७॥

सुख-दुख लाभ-हानि, जय-पराजय समान समझ।

युद्ध के लिये हो सन्नद्ध, न पाप होगा स्पर्श ॥३८॥

अब तक आत्मज्ञान दिया, पार्थ अब कर्मयोग बताता हूँ।

धर्म-अधर्म कर्म बन्धन से, मुक्ति की राह दिखाता हूँ ॥३९॥

कर्मयोग में प्रारम्भ कर्म नाश, न अधर्म पाप होता।

अल्प अनुष्ठान इसका, महान भय तारता ॥४०॥

इस कर्मयोग में अर्जुन, सुनिश्चित रूप ज्ञान एक।

अज्ञान बुद्धि बहुशाखा विभक्त, इसके होते प्रकार अनेक ॥४१॥

वैदिक सकाम कर्म के, जो अल्पबुद्धि प्रशंसक होते।

स्वर्गप्रद कर्म छोड़ न कुछ, ऐसे मतवाले होते ॥४२॥

कामनायुक्त स्वर्ग इक्छुक, जन्म रूप कर्म फल।

सुख भोग ऐश्वर्य हेतु, अनेक कर्मों के प्रशंसक ॥४३॥

निज मत स्तुति कर, भोगासक्त चित्त हर लेते।

ऐसों के अंतःकरण में, निश्चय ईश्वर तत्व न टिक पाते ॥४४॥

सत-रज-तम मयी वेद हैं, निष्काम बन अर्जुन।

सुख-दुःख योग-क्षेम रहित, त्रिगुणातीत, ईश्वरालंबी बन ॥४५॥

जब हो सकल धरा जलमग्न, न कुँए पोखर का प्रयोजन।

आत्मज्ञ ब्राह्मण के लिये, न वैदिक कर्मकांड का प्रयोजन ॥४६॥

कर्म पर अधिकार तेरा, न फल पर अधिकार।

कर्मफल इच्छा त्याग उचित, सर्वदा अनुचित कर्मत्याग ॥४७॥

योग स्थित आसक्ति त्याग, सिद्धि-असिद्धि में समान।

ऐसे कर्म करो धनञ्जय, समभाव बुद्धि यह योग महान ॥४८॥

निष्काम कर्म से अर्जुन, सकाम कर्म अति निकृष्ट होते।

तुम समबुद्धि धारण करो, फल इच्छुक अति दीन होते ॥४९॥

कर्मयोगी पाप-पुण्य बंधन से, इसी जीवन में मुक्त होता।

तुम निष्काम कर्म करो, यह कर्मकौशल ही योग है ॥५०॥

कर्मयोगी जन्म मृत्यु बंधन से, कर्मफल त्याग मुक्त होते।

क्लेश रहित परमपद, निश्चय मोक्ष को प्राप्त होते ॥५१॥

मोह रूप अज्ञान छोड़ेगी, जब यह बुद्धि तुम्हारी।

सुनने योग्य सुने विषय में, तब होगी तुम्हें विरक्ति ॥५२॥

लौकिक वैदिक फलश्रुतियाँ सुन, विक्षिप्त बुद्धि होगी समाधि स्थित।

पा समबुद्धि की योगावस्था, होगे तत्वज्ञान में प्रतिष्ठित ॥५३॥

**अर्जुन उवाच**

समाधियुक्त स्थितप्रज्ञ के केशव, होते क्या विशिष्ट लक्षण।

स्थिरबुद्धि कैसे बातें करता, कैसे रहता करता विचरण ॥५४॥

**श्रीभगवान उवाच**

बाहरी विषयों से हटकर जब, स्वरूपानंद में रहता संतुष्ट।

योगी सब मनोकामना त्यजता, तब कहलाता स्थितप्रज्ञ ॥५५॥

दुःख में न मन उद्विग्न होता, सुख में जो आकांक्षा रहित।

स्थितप्रज्ञ मुनि उसे कहते, जो आसक्ति भय क्रोध रहित ॥५६॥

शुभ-अशुभ विषय प्राप्त कर, होता आनंदित न असंतुष्ट।

सब विषयों में आसक्तिशून्य, होता उसका ज्ञान प्रतिष्ठित ॥५७॥

जैसे कछुआ रक्षा हेतु, निज अंग भीतर सिकोड़ लेता।

स्थितप्रज्ञ योगी इन्द्रियों को, विषयों से आत्मा में समेट लेता ॥५८॥

इन्द्रियाँ विषयों से समेट, विषय जाते बचती आसक्ति।

स्थितप्रज्ञ के इस रस की भी, परम साक्षात्कार से होती निवृत्ति ॥५९॥

निश्चय ही बलवान इन्द्रियाँ, हे कुन्तीपुत्र अर्जुन।

यत्नशील विवेकी नर के भी, मन का बलात करती हरण ॥६०॥

योगी कर इन्द्रिय संयम, समाहित हो रहे अवस्थित।

जिसकी इन्द्रियां हैं वश में, ऐसे भक्त की प्रज्ञा प्रतिष्ठित ॥६१॥

विषयों के निरंतर ध्यान से, उनमें आसक्ति होती।

आसक्ति से कामना होती, कामना क्रोध को जन्मती ॥६२॥

क्रोध से मोह होता, मोह से स्मृति नष्ट होती।

स्मृति नाश से बुद्धि नाश, बुद्धि नाश से मनुष्य नष्ट होता ॥६३॥

आसक्ति विद्वेष रहित, वशीभूत इन्द्रियों से कर विषय भोग।

संयतेन्द्रिय मनुज निज मन में, प्रसन्नता करता उपभोग ॥६४॥

चित्त की प्रसन्नता पाकर, सब दुखों का नाश होता।

ऐसे प्रसन्नचित्त की, प्रज्ञा ब्रह्मज्ञान में होती स्थित ॥६५॥

आत्मज्ञान हीन में कहाँ प्रज्ञा, साधनाहीन में आत्मचिन्तन।

ईश्वर चिंतन रहित हो कहाँ शांति, अशांत चित्त को कहाँ आनंद ॥६६॥

विषय चरती इन्द्रियों में, मन जिसका भी पीछा करता।

वह उस नर की बुद्धि हरती, जैसे वायु जल में नौका ॥६७॥

जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से, पूर्णतया संयत हैं अर्जुन।

उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित, वह ही स्थितप्रज्ञ महान ॥६८॥

सब प्राणियों को रात्रि स्वरुप, जागते उसमें संयमी योगी।

जिसमें सब प्राणी जागते, वह योगी की रात्रि होती ॥६९॥

जैसे शांत सागर में सब, नदियों का जल प्रवेश कर।

पूर्ण स्थिर उस सागर हो, न विचलित कर पाता।

ऐसे आत्मस्थित योगी में, सब विषय कर प्रवेश न चंचल करते।

यही स्थितप्रज्ञ परमशांति पाता, न वह जो विषय कामी ॥७०॥

समस्त कामनाओं को त्याग, वासनाओं से हो रहित।

ममता अहंकार रहित कार्य करता, वह पुरुष चित्त शान्ति पाता ॥७१॥

यही ब्रह्मरूप में अवस्थिति, पाकर न संसार से मोहित होता।

मृत्यु समय इस में प्रतिष्ठित, ब्रह्मानंद को प्राप्त होता ॥७२॥

**॥इति द्वितीयोऽध्यायः॥**

**हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत्**

# ३) कर्मयोगः

**अर्जुन उवाच**

यदि कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ, तुम्हारे मत में केशव।

क्यों घोर युद्ध कर्म में, मुझे नियुक्त करते अब ॥१॥

विचार बुद्धि मोहित कर रहे, परस्पर विरोधी वचनों से।

एक मार्ग निश्चित बताओ, जिससे कल्याण हो सके ॥२॥

**श्रीभगवान उवाच**

संसार में दो ब्रह्मनिष्ठा, मैंने पहले ही कहीं।

ज्ञानयोग से ज्ञानियों की, कर्मयोग से योगियों की ॥३॥

कर्म अनुष्ठान न कर, न नर आत्मज्ञान पाता।

न कर्मत्याग कर ही, कर्मबन्धन मुक्त हो पाता ॥४॥

बिना कर्म किये कोई, न क्षणभर भी रह पाते।

प्रकृति के गुण कर विवश, सभी से कर्म करवाते ॥५॥

कर्मेन्द्रियाँ संयत कर जो, मन से विषय चिंतन करता।

अज्ञानी वह नर अर्जुन, मिथ्याचारी कहलाता ॥६॥

ज्ञानेन्द्रियाँ मन से संयत कर, अनासक्त भाव से अर्जुन।

कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग करता, वह नर श्रेष्ठ कहलाता ॥७॥

शास्त्रविहित कर्म कर अर्जुन, कर्म अकर्म से श्रेष्ठ होते।

कर्म न करने से तुम, शरीर रक्षा भी न कर पाते ॥८॥

आसक्ति छोड़ हे अर्जुन, विष्णु प्रीति हेतु कर्म करो।

यह यज्ञ अनुष्ठित कर्म छोड़, सब कर्म बंधन हेतु होते ॥९॥

ब्रह्मा ने यज्ञ द्वारा, सृष्टि रचना कर कहा।

तुम यज्ञ से वृद्धि करो, यह कामधेनु तुल्य हो ॥१०॥

यज्ञ से देवता उन्नति करें, करें देव उन्नति तुम्हारी।

परस्पर उन्नति करो तुम, बने यह यज्ञ कल्याणकारी ॥११॥

देव यज्ञ से सेवित हो, पूरी करेंगे इच्छा तुम्हारी।

उन्हें न भोग लगा भोगता, सो नर चोरी का भागी ॥१२॥

देव निवेदित अन्न प्रसाद रूप, खाते सो तर जाते।

जो केवल निज हित पकाते, सो नर पाप ही खाते ॥१३॥

अन्न से प्राणी उत्पन्न, अन्न मेघ से होता।

मेघ यज्ञ-धूम से उत्पन्न, यज्ञ कर्म से होता ॥१४॥

यज्ञ कर्म वेद से उत्पन्न, वेद परमात्मा से कथित।

सर्वव्यापी ब्रहम सदा, होता यज्ञ में प्रतिष्ठित ॥१५॥

इस प्रचलित सृष्टिकर्म का, जो ना करता पालन।

वह इन्द्रिय सुखासक्त प्राणी, व्यर्थ करता जीवन धारण ॥१६॥

केवल परमात्मा में संतुष्ट, परमात्मा में ही तृप्त।

न कोई कर्त्तव्य शेष रहता, जो केवल ईश्वर अनुरक्त ॥१७॥

न कर्मत्याग का अर्जुन, न कर्मानुष्ठान प्रयोजन।

किसी प्रयोजन सिद्धि हेतु, न उसका स्वार्थ संबंध ॥१८॥

अनासक्त भाव से अर्जुन, सदा कर्तव्य कर्म करो।

निष्काम कर्म अनुष्ठान कर, मनुष्य मोक्ष पद पाता ॥१९॥

जनकादि राजा ने कर्म से, उत्तम सिद्धि की अर्जित।

संसार कल्याण हेतु, तुम्हें कर्म करना उचित ॥२०॥

श्रेष्ठ जैसे कर्म करता, आम जन करते धारण।

जिसे श्रेष्ठ प्रमाणित करता, अन्य करें वही पालन ॥२१॥

तीन लोकों में न कर्तव्य, न कुछ अप्राप्त-प्राप्त योग्य।

फिर भी जग कल्याण हेतु, सदा करूँ में कर्म उद्योग ॥२२॥

कदाचित निद्रा-आलस्य छोड़, न होऊँ कर्म-प्रवृत्त।

मनुष्य मेरे मार्ग का, सब प्रकार करें अनुसरण ॥२३॥

सब लोक नष्ट-भ्रष्ट होवें, यदि मैं न कर्म करूँ।

वर्णसंकर संतान कर्ता, प्रजा ध्वंस कारण बनूँ ॥२४॥

कर्म में आसक्त अज्ञानी, जिस तीव्रता से कर्म करे।

ज्ञानी लोक कल्याण हेतु, अनासक्त हो कर्म करे ॥२५॥

कर्म आसक्त अज्ञानी में, न ज्ञानी बुद्धिभेद उत्पन्न करे।

लगन से सब अनुष्ठान कर, अज्ञानी को कर्म नियुक्त रखे ॥२६॥

त्रिगुणमयी प्रकृति से उत्पन्न, शरीर-इन्द्रिय सब कर्म करे।

अहंकार अंध व्यक्ति समझे, वह ही सब कर्म करे ॥२७॥

गुण कर्म विभाग के तत्वज्ञ, त्रिगुणमयी इन्द्रियां निज विषयों में।

सदा से हैं बरततीं, जान न कर्तापन अभिमान करें ॥२८॥

प्रकृति गुणों से मोहित, देहेन्द्रिय कर्मों में आसक्त होते।

ऐसे मन्दबुद्धि वालों हो, ज्ञानी न कर्मत्याग उपदेश करे ॥२९॥

विवेक बुद्धि द्वारा मुझे, कर्म-कर्मफल कर अर्पित।

निष्काम कर्म करो अर्जुन, हो भय शून्य ममता रहित ॥३०॥

ईर्ष्यारहित जो नर, यह मत सदा अनुष्ठान करते।

श्रद्धावान वे सब भी, कर्मबंधन से मुक्त होते ॥३१॥

ईर्ष्यायुक्त जो नर, यह मत न अनुष्ठान करता।

अविवेकी अज्ञानी वे सब, विनष्ट ही हो जाते ॥३२॥

ज्ञानवान नर भी, निज प्रकृति अनुसार कर्म करे।

जीव निज स्वभाव से चलता, कोरा उपदेश क्या करे ॥३३॥

इन्द्रियाँ निज विषय में, सदा राग-द्वेष रखतीं।

न इनके वशीभूत होओ, दोनों मोक्षमार्ग के बैरी ॥३४॥

सुअनुष्ठित परधर्म से, गुणहीन निजधर्म श्रेष्ठतर।

परधर्म सदा भय युक्त, निजधर्म में मृत्यु कल्याणकर ॥३५॥

**अर्जुन उवाच**

किसके द्वारा परिचालित, यह मनुष्य पाप करता।

इच्छा न रहते वार्ष्णेय, बलपूर्वक नियुक्त सा हुआ ॥३६॥

**श्रीभगवान उवाच**

यह काम है यह क्रोध है, रजोगुण से उत्पन्न।

महापापी न तृप्त होता, यह ही है शत्रुघन ॥३७॥

अग्नि धुएँ से ढँकी, दर्पण मैल से ढँका।

गर्भ जरायु से ढँका, विवेक-ज्ञान काम से ढँका ॥३८॥

ज्ञानी व्यक्ति की चिरशत्रु, अतृप्त कामरूप अग्नि से।

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन, मनुष्य ज्ञान ढँका रहता ॥३९॥

यह इन्द्रिय मन बुद्धि, इस काम के आश्रयस्थल होते।

इनसे बुद्धि आवृत्त कर, यह काम जीव मोहित करता ॥४०॥

हे भरतवंश श्रेष्ठ अर्जुन, पहले इन्द्रियाँ वशीभूत कर।

ज्ञान विज्ञान नाशक, पाप रूप काम त्याग कर ॥४१॥

इन्द्रियाँ शरीर से श्रेष्ठ, इन्द्रियों से मन श्रेष्ठतर।

मन से बुद्धि श्रेष्ठ, बुद्धि से परे आत्मा श्रेष्ठतम ॥४२॥

निश्चयात्मिका बुद्धि से, विपथगामी मन निश्चल कर।

हे वीरश्रेष्ठ अर्जुन, वासना रूप दुर्जेय शत्रु त्यागो ॥४३॥

**॥इति तृतीयोऽध्यायः॥**

**हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत्**

# ४) ज्ञानकर्मसन्यासयोगः

**श्रीभगवान उवाच**

यह अक्षय फलदायक योग, प्रथम सूर्य से कहा।

सूर्य निज पुत्र मनु को, मनु ने इक्ष्वाकु से कहा ॥१॥

क्षत्रिय परंपरा से प्राप्त, यह योग राजर्षियों ने जाना।

इस लोक में हे अर्जुन, यह दीर्घकाल से नष्ट हुआ ॥२॥

तुम मेरे भक्त और मित्र, इस कारण यह सनातन योग।

मैंने आज तुम्हें कहा, यह उत्तम गूढ़ तत्व है ॥३॥

**अर्जुन उवाच**

आपका जन्म बाद में, सूर्य का पहले हुआ।

सूर्य को योग उपदेश, तुमने दिया कैसे जानूँ ॥४॥

**श्रीभगवान उवाच**

मेरे और तुम्हारे अर्जुन, अनेक जन्म व्यतीत हुये।

मुझे ज्ञान उन सबका, न तुम ऐसे ज्ञानी हुये ॥५॥

मैं अजन्मा अविनाशी, प्राणियों का नियामक ईश्वर।

निज प्रकृति आश्रय कर, योगमाया से जन्म लेता ॥६॥

जब जब धर्म की हानि, अधर्म की वृद्धि होती।

मनुज देह धारण कर, योगमाया से अवतार लेता ॥७॥

साधुओं की रक्षा हेतु, पापियों के नाश को।

धर्म स्थापना के लिए, युग युग में अवतार लेता ॥८॥

मेरा अलौकिक शरीर धारण, कर्म रहस्य यथार्थ जानते।

शरीर छूटे न जन्म लेते, मुझे ही प्राप्त होते ॥९॥

विषयासक्ति भय क्रोध रहित, मुझमें मन मेरा आश्रय कर।

ज्ञान तप से पवित्र हुये, अनेक मुझे भाव से पाते ॥१०॥

मुझे जिस भाव से भजते, उसी भाव से अनुग्रह करता।

मैं ही अद्वितीय पुराण पुरुष, सब मेरे मार्ग पर चलते ॥११॥

कर्म सिद्धि जो चाहते, देव पूजन करते।

मनुष्य लोक में अर्जुन, कर्म सिद्धि शीघ्र पाते ॥१२॥

गुण-कर्म विभागानुसार, मैनें चार वर्ण-धर्म रचे।

उनका कर्ता हूँ फिर भी, मुझे अविकारी अकर्ता जान ॥१३॥

न कर्म मुझे लिप्त करते, न मेरी कर्मफल में इच्छा।

ऐसा जो मुझे जानता, सो नर निर्वाण मुक्ति पाता ॥१४॥

मुझे अकर्ता अभोक्ता जान, मुमुक्षुओं ने सब कर्म किये।

पूर्व काल में हुये जैसे, तुम भी निष्काम कर्म करो ॥१५॥

कर्म क्या कर्म अभाव क्या, इसमें पंडित भी मोहित।

तुम्हें कर्म अकर्म कहता, सुन अशुभ दुःख से होगे मुक्त ॥१६॥

शास्त्रविहित कर्मों को जानो, निषिद्ध कर्म का ले ज्ञान।

कर्मत्याग विषय भी जानो, जर्म गति अति महान ॥१७॥

कर्म में कर्म अभाव, अकर्म में कर्तव्य कर्म देखता।

मनुष्यों में ज्ञानी योगयुक्त, समस्त कर्म का कर्ता होता ॥१८॥

जिसकी सब चेष्टायें कामना, कर्तव्याभिमान रहित।

ज्ञानाग्नि में कर्म भस्म हुये, ज्ञाने कहें उसे पंडित ॥१९॥

कर्म और फल में आसक्ति, छोड़ रहता निराश्रय तृप्त।

न कुछ भी करता, यधपि कर्म में विशेष प्रवृत्त ॥२०॥

कामना रहित संयत चित्त, सब विलास सामग्री त्याग।

केवल देह रक्षा कर्म कर, न होता कभी पाप प्राप्त ॥२१॥

अयाचित प्राप्ति से संतुष्ट, ईर्ष्याहीन सुख-दुख में सामान।

कर्म सिद्धि असिद्धि में समभाव, कर्म कर भी न हों बन्धायमान ॥२२॥

आसक्ति राग-द्वेष रहित, ज्ञान ब्रह्म में संलग्न चित्त।

यज्ञ हेतु कर्म अनुष्ठान कर, होते सब कर्म विलीन ॥२३॥

सुव्र ब्रह्म है घी ब्रह्म, ब्रह्माग्नि में ब्रह्म करे होम।

ब्रह्म रूप कर्म में सयंतचित्त, जान ब्रह्म ही पाते ॥२४॥

दूसरे योगी देव पूजा रूप, यज्ञ का करते अनुष्ठान।

अन्य ब्रह्म रूप अग्नि में, यज्ञ से करें होम ॥२५॥

अन्य ज्ञानेन्द्रियों की, संयमाग्नि में आहुति देते।

कुछ इन्द्रियाग्नि में, इन्द्रिय विषय करते होम ॥२६॥

अन्य सब इन्द्रिय चेष्टाओं, प्राणवायु के कर्मों की।

ज्ञानाग्नि द्वारा प्रदीप्त, आत्मसंयमाग्नि में करते होम ॥२७॥

कोई द्रव्य दान कोई तप यज्ञ, चित्तवृत्ति निरोध समधियात।

कोई दृढ़व्रत यति लोग, वेदाभ्यास-वेदाज्ञान यज्ञ करें ॥२८॥

अन्य प्राण में अपान, अपान में प्राणवायु करें होम।

अन्य नियताहारी प्राणायाम कर, इन्द्रिय प्राण में करें होम ॥२९॥

यज्ञ से निष्पाप हुये विद्वान, यज्ञावशिष्ट भोजन करते।

ऐसे यज्ञों के ये ज्ञाता, सनातन नित्य ब्रह्म पाते ॥३०॥

यज्ञ न करने वालों का अर्जुन, न इहलोक फिर परलोक कैसा ॥३१॥

ब्रह्म मुख वेद में, ऐसे अनेक यज्ञ विहित होते।

यह सब कर्म से उत्पन्न जान, भय बंधन से मुक्त होंगे ॥३२॥

द्रव्य निष्पन्न यज्ञ से, कामनाशून्य ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ।

निरवशेष सब कर्म अर्जुन, ब्रह्मात्मज्ञान में होते लीन ॥३३॥

गुरु चरण कर सेवा प्रणाम, आत्मविषयक प्रश्न करो।

ब्रह्मज्ञ-वेदज्ञ गुरु तुम्हें, करेंगे आत्मज्ञान उपदेश ॥३४॥

ऐसा ज्ञान पा अर्जुन, न फिर मोहित होगे।

सब प्राणी निज आत्मा में, फिर मुझमें ही देखोगे ॥३५॥

सब पापियों से अर्जुन, तुम अधिक पापी बनते।

ज्ञान बेड़े पर हो सवार, पाप समुंद्र पार होते ॥३६॥

प्रदीप्त अग्नि जैसे अर्जुन, लकड़ियां भस्म करती।

ज्ञानाग्नि प्रारब्ध कर्म छोड़, अन्य कर्म नष्ट करती ॥३७॥

इस लोक में ज्ञान से, न कुछ पवित्र अर्जुन।

कर्मयोगी निज अंतःकरण में, यह ज्ञान अनुभव करते ॥३८॥

श्रद्धावान तत्पर साधक, जितेन्द्रिय ब्रह्मज्ञान पाते।

ज्ञान पाकर शीघ्र ही, मोक्ष के अधिकारी होते ॥३९॥

अज्ञानी श्रद्धारहित, संशय आत्मा नष्ट होता।

संदेहशील हो न सुख, न लोक परलोक होता ॥४०॥

आत्मज्ञान से संशय छिन्न, ईश्वर अर्पित कर्म करते।

ऐसे आत्मज्ञ व्यक्ति को, न कर्म आबद्ध करते ॥४१॥

**॥इति चतुर्थोऽध्यायः॥**

**हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत्**

# ५) कर्मसन्यासयोगः

**अर्जुन उवाच**

पहले कर्मत्याग फिर, कर्मयोग प्रशंसा करते हो।

दोनों में जो श्रेयकर, सो निश्चित कर कहो ॥१॥

**श्रीभगवान उवाच**

कर्मत्याग और कर्मसन्यास, दोनों होते मुक्तिकर।

किंतु कर्मत्याग अपेक्षा, निष्काम कर्म ही श्रेष्ठकर ॥२॥

जो न आकांक्षा-द्वेष करें, वे सदा सन्यासी जान।

राग-द्वेष द्वंद रहित, सहज मुक्ति करते पान ॥३॥

अज्ञानी कर्मत्याग-कर्मयोग, परस्पर विरोधी कहते।

विद्वान एक अनुष्ठान कर, ज्ञान-कर्म फल मोक्ष पाते ॥४॥

कर्मसन्यासी-कर्मयोगी, दोनों मोक्ष पद पाते।

जो यह रहस्य समझें, वे ही यथार्थ देख पाते ॥५॥

निष्काम कर्म किये बिना, कर्मसन्यासी दुखकारी।

किंतु कर्मयोगी मुनि शीघ्र, होते ब्रह्मपद अधिकारी ॥६॥

शुद्धात्मा कर्मयोगी, जितेन्द्रिय सर्वभूतात्मा।

निज आत्मा में देख, कर्म कर भी न लिप्त होता ॥७॥

न मैं कुछ भी करूँ, तत्वज्ञ योगी ऐसा मानते।

दर्शन श्रवण स्पर्श घ्राण, स्वाद मनन निद्रा श्वास ॥८॥

वाक्य कथन त्याग ग्रहण, आँख खोल बंद कर।

इन्द्रियां निज अर्थों में बरतें, ऐसी धारणा करते ॥९॥

सब कर्म ब्रह्मअर्पण कर, कर्मकल में आसक्ति रहित।

जल में कमल पत्र से, पाप से न होते लिप्त ॥१०॥

योगी शरीर मन बुद्धि, इन्द्रियों से आसक्ति त्याग।

केवल ईस्वर अर्पित कर्म, चित्तशुद्धि हेतु करते ॥९१॥

कर्मयोगी फलाकांक्षा त्याग, आत्यन्तिक शांति पाते।

सकामी कर्मफल आसक्त हो, निश्चय ही दुख पाते ॥९२॥

विवेकी मन से सब, शुभाशुभ कर्मत्याग!

नौ द्वार शरीर में देही, रहता सुखी कर्ता अहंत्याग ॥९३॥

प्रभु न कर्तापन रचें, न कर्म-कर्मफल संयोग करें।

जीव निज प्रारब्ध अनुसार, विवश सब कर्म करे ॥९४॥

सर्वव्यापी ईस्वर किसी का, न पाप पुण्य ग्रहण करें।

अज्ञानी जीव मोहित हो, आत्मा को संसारी कहे ॥९५॥

आत्मज्ञान से जिनका, मोह अज्ञान हुआ नाशित।

सूर्य समान वह ज्ञान, परमेश्वर स्वरुप करता प्रकाशित ॥९६॥

ईस्वर में चित्त बुद्धि लीन, उन में ही प्रीति आश्रय।

आत्मज्ञानी पाप रहित साधक, जन्म मृत्यु से होते मुक्त ॥९७॥

विद्या विनयी ब्राह्मण गाय, हाथी कुत्ता चांडाल।

सब में एक ही ब्रह्म देखे, हो जाए जिसे आत्मज्ञान ॥९८॥

शरीर रहते संसार जीतें, जिनका मन निश्चल ब्रह्म स्थित।

निर्दोष ब्रह्म सब में समान, इससे ब्रह्म में वे स्थित ॥९९॥

प्रिय वस्तु न हर्षित करे, न अप्रिय प्राप्त कर दुखित।

ऐसे निश्चल बुद्धि मोह रहित, ब्रह्मज्ञ होते ब्रह्मस्थित ॥२०॥

बाहरी विषयों में अनासक्त, योगी ब्रह्म में संलग्न।

जो आत्मा में नित्य सुख पाते, अक्षय सुख में होते मग्न ॥२१॥

इन्द्रिय विषय योग से प्राप्त, भोग दुखकारी होते।

सर्वदा अनित्य ये सुख, इनमें न ज्ञानी रमते ॥२२॥

जो ज्ञानी देह त्याग पूर्व, काम क्रोध वेग सह पाते।

वह समाहित चित्त योगी, जग में सदा सुख पाते ॥२३॥

जो आत्मा में सुखी मग्न, अंतर ज्ञानालोक से प्रकाशित।

वह योगी ब्रह्मभाव पा, ब्रह्मनिर्वाण पाते ॥२४॥

निष्पाप संशयहीन, संयतचित्त कल्याण रत।

ऐसी ऋषि इस जीवन में , ब्रह्मनिर्वाण मोक्ष प्राप्त ॥२५॥

काम क्रोध मुक्त संयतचित, यतियों के शरीर त्याग।

पहले और उपरांत, ब्राह्मी स्थिति में निर्वाण साथ ॥२६॥

मन से बाहरी विषयत्याग, चक्षु रख भौहों के बीच।

नाक भीतर प्राण अपानवायु, समभाव में रख स्थित ॥२७॥

इन्द्रिय बुद्धि वशीभूत कर, इच्छा भय क्रोध त्याग।

मोक्ष परायण मुनि सदा, जीवनमुक्त ही कहलाते ॥२८॥

यज्ञ तपस्या फल भोक्ता, सब लोकों का महेश्वर।

प्राणियों का परममित्र जान, योगी परम शान्ति पाते ॥२९॥

**॥इति पंचमोऽध्यायः॥**

**हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत्**

# ६) आत्मसंयमयोगः

**श्रीभगवान उवाच**

कर्म फल आसक्ति त्याग, जो कर्तव्य कर्म करे।

वही सन्यासी वही योगी, न जो निरग्नि अक्रिय रहे ॥१॥

जिसे सन्यास कहते अर्जुन, उसी को योग कहें।

जो न संकल्प त्याग करे, वह न कभी योगी बने ॥२॥

योगारूढ़ इच्छुक होने को, निष्काम कर्म हेतु बने।

योगारूढ़ मुनि कल्याण को, सर्वसंकल्प त्याग हेतु बने ॥३॥

जब न इन्द्रिय भोगों में, न सकाम कर्म में आसक्त।

सर्वसंकल्प त्यागी पुरुष, योगारूढ़ तब कहलाता ॥४॥

स्वयं ही निज उद्धार करे, न स्वयं अधोगति गिरे।

स्वयं ही अपना मित्र है, स्वयं ही अपना शत्रु ॥५॥

शरीर-इन्द्रिय-मन जीते जो, स्वयं ही निज मित्र है।

जो न वश करे इन्हें, स्वयं ही निज शत्रु ॥६॥

सर्दी गर्मी सुख दुख, मान अपमान में शांत चित्त।

आत्मजयी ऐसा योगी रहे, परमात्मा में सम्यक स्थित ॥७॥

जितेन्द्रिय अविकारी है जो, अंतःकरण ज्ञान विज्ञान तृप्त।

माटी-पत्थर-सोना समान, ऐसा योगी भगवत युक्त ॥८॥

सुह्रद मित्र वैरी उदासीन, मध्यस्थ बंधु एवं द्वेष्य।

धर्मात्मा पापी में समभाव, योगी होता अत्यन्त श्रेष्ठ ॥९॥

शरीर इन्द्रिय मन वश में, आशाहीन संग्रह रहित।

आत्मा परमात्मा में लगावे, एकाकी योगी हो एकांत स्थित ॥१०॥

शुद्ध भूमि में जिसपर, कुशा मृगछाला वस्त्र बिछे।

न बहुत ऊँचा न नीचा, ऐसा आसन स्थिर करे ॥११॥

ऐसे आसन पर बैठ, अंतःकरण वश में कर।

मन एकाग्र कर योगी, आत्मशुद्धि हेतु योग करे ॥१२॥

काया-सिर-गला समान, अचल धारण कर हो स्थिर।

नासिका अग्र पर दृष्टि जमा, न हो अन्य दिशा भ्रमित ॥१३॥

ब्रह्मचारी भयरहित, शांत आत्मा योगी सावधान।

मन साध मुझमें चित्तवाला, मेरे परायण हो करे अवस्थान ॥१४॥

मन वश में है जिसके, आत्मा परमात्मा में लगा।

योगी मुझमें रहनेवाले, परमानंद शांति पाता ॥१५॥

योग न अत्याहारी का, न निराहारी का सिद्ध होता।

न बहुत निद्राशील, न सदा जागृत सिद्धि पाते ॥१६॥

यथायोग्य आहार विहार, यथायोग्य चेष्टा वाले।

यथायोग्य सोने जगने वाले, दुखनाशक योगसिद्धि पाते ॥१७॥

वशीभूत चित्त जिस काल में, परमात्मा में होता स्थित।

तब सब भोगों से स्पृहारहित, पुरुष होता योगयुक्त ॥१८॥

जैसे वायुरहित स्थान में, दीपक लौ न हो चलायमान।

परमात्मा ध्यान में योगी का, चित्त न होता चलायमान ॥१९॥

योगाभ्यास से चित्त निरोध, सूक्ष्म बुद्धि से परमात्मा।

का कर साक्षात दर्शन, परमात्मा में संतुष्ट रहता ॥२०॥

इन्द्रियों के परे बुद्धि ग्राहय, अत्यंत आनंद अनुभव करता।

जिस अवस्था में योगी, न स्वरुप से विचलित होता ॥२१॥

जिस लाभ को पा योगी, न अधिक कुछ भी मानता।

जिस अवस्था में स्थित, न भारी दुख से भागता ॥२२॥

दुखरूप संसार से संयोग रहित, यह योग जानना उचित।

यह योग धैर्य उत्साह से, निश्चयपूर्वक करना उचित ॥२३॥

संकल्प उत्पन्न सब कामनायें, स्वरुप से त्यागकर।

मन द्वारा इन्द्रिय समूह, सब ओर से रोककर ॥२४॥

क्रम से उपरतिपा, धैर्ययुक्त बुद्धि से मन को।

परमात्मा में स्थित कर, और न कुछ चिन्तन करे ॥२५॥

यह अस्थिर चंचल मन, जिन विषयों का पीछा करता।

उन विषयों से मन हटा, परमात्मा में स्थिर करे ॥२६॥

शांतमन पापरहित योगी, रजोगुण शांत हुआ जिसका।

ब्रह्म से एकीभाव हो, उत्तम आनंद प्राप्त करता ॥२७॥

पापरहित योगी निज आत्मा, परमात्मा में लगाता हुआ।

सुखपूर्वक ब्रह्म प्राप्ति रूप, अनंत आनंद अनुभव करता ॥२८॥

अनंत चेतन में एकीभाव स्थित, सब में समभाव रखता।

आत्मा को सब भूतों में, सब भूत आत्मा में देखता ॥२९॥

जो सब भूतों में मुझ वासुदेव, सब भूत मुझमें देखता।

ऐसे योगी को न मैं भूलता, न वह ही मुझे भूलता ॥३०॥

जो एकीभाव में स्थित हो, मुझ वासुदेव हो भजता।

वह योगी सब प्रकार बरतकर, मुझमें ही है बरतता ॥३१॥

जो योगी अपनी भाँती अर्जुन, सब भूतों में सम देखता।

सुख दुख में भी सम देखे, वह योगी परमश्रेष्ठ होता ॥३२॥

**अर्जुन उवाच**

जो यह योग मधुसूदन, तुमने समभाव से कहा।

मन के चंचल होने से, न इसकी नित्य स्थिति देखता ॥३३॥

यह मन बड़ा चंचल कृष्ण, बड़ा बलवान और दृढ़।

यह मन वशीभूत करना, वायु बाँधने समान दुष्कर ॥३४॥

**श्रीभगवान उवाच**

निःसन्देय यह मन चंचल, कठिनता से वश होता।

किंतु अभ्यास वैराग्य से, वश में होता अर्जुन ॥३५॥

अवशीभूत मनवाला, न योग प्राप्त कर पाता।

वशीभूत मनवाला मेरे मत में, सहज ही योग पाता ॥३६॥

**अर्जुन उवाच**

श्रद्धावान साधक संयम त्याग, अंतकाल में योगभ्रष्ट होता।

योगसिद्धि न पाकर, किस गति को प्राप्त होता ॥३७॥

क्या भगवतप्राप्ति मार्ग में, मोहित आश्रयरहित साधक।

छिन्न छिन्न बादल समान, उभयभ्रष्ट न होता नष्ट ॥३८॥

मेरे इस संशय का कृष्ण, आप ही पूर्ण छेदन कर पाते।

दूसरा जो करे संशय दूर, न मिलना संभव ॥३९॥

**श्रीभगवान उवाच**

साधक का न इस लोक, न परलोक में नाश होता।

भगवतप्राप्ति इच्छुक नर, न कभी दुर्गति पाता ॥४०॥

योगभ्रष्ट साधक स्वर्ग में, बहु वर्ष निवास कर।

शुद्धाचरण श्रीमान पुरुषों के, घरों में जन्म लेता ॥४१॥

अथवा यह साधक ज्ञानवान, योगियों के कुल में जन्मता।

किंतु ऐसा पुनर्जन्म, संसार में अति दुर्लभ ॥४२॥

वहाँ पहले शरीर में संग्रहित, संस्कारों को प्राप्त होता।

उनके प्रभाव से अर्जुन, पुनः सिद्धि मार्ग में बढ़ता ॥४३॥

यह योगभ्रष्ट पराधीन साधक, प्रारब्धवश योगपथ पर आता।

समबुद्धि योग जिज्ञासु भी, सकाम कर्मफल पार कर पाता ॥४४॥

प्रयत्नशील योगी इसी जन्म में, पूर्व संस्कार बल द्वारा।

सैम पापरहित सिद्धि पाकर, परमात्मा हो प्राप्त होता ॥४५॥

योगी तपस्वी से श्रेष्ठ, शास्त्रज्ञानी से श्रेष्ठ होता।

सकाम कर्मी से श्रेष्ठ, अतः अर्जुन तू योगी बन ॥४६॥

सब योगियों में जो श्रद्धावान, मुझमें लगे अंतरात्मा से।

निरंतर मुझे ही भजता, वह योगी मुझे श्रेष्ठ होता ॥४७॥

**॥इति षष्ठोऽध्यायः॥**

**हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत्**

# ७) ज्ञानविज्ञानयोगः

**श्रीभगवान उवाच**

मुझमें आसक्त चित्त अर्जुन, मेरे परायण योग रत।

जैसा मेरा सम्पूर्ण ऐश्वर्य, निश्चित जानेगा यह सुन ॥१॥

तेरे लिये यह विज्ञान सहित, तत्वज्ञान कहूँगा पूर्णतया।

जिसे जानकर संसार में, न कुछ जानने योग्य रहे ॥२॥

हजार जान में कोई एक, मेरी प्राप्ति हेतु यत्न करता।

यत्नशील योगियों में कोई एक, मुझे तत्व से जानता ॥३॥

पृथ्वी जल अग्नि वायु, आकाश मन बुद्धि अहंकार।

ऐसी मेरी प्रकृति है, आठ प्रकार से विभाजित ॥४॥

यह मेरी अपरा जड़ प्रकृति, इससे दूसरी जिससे वह।

सम्पूर्ण जगत धारण करती, उसे चेतना परा प्रकृति जान ॥५॥

ऐसा समझ सारे भूत, दोनों प्रकृति से उत्पन्न।

मैं सारे जगत का मूल कारण, प्रभव तथा प्रलय हूँ ॥६॥

मुझसे भिन्न दूसरा धनंजय, न कोई परम कारण।

यह जगत सूत्र में, मणि सैम मुझमें गुँथा ॥७॥

मैं जल में रस, चन्द्र-सूर्य में प्रकाश हूँ।

सब वेदों में ओंकार, नभ में शब्द नरों में पुरुषत्व ॥८॥

पृथ्वी में पवित्र गंध, अग्नि में तेज हूँ।

सब भूतों में जीवन, तपस्वियों में तप हूँ ॥९॥

सब भूतों का अर्जुन, सनातन बीज मुझे जान।

मैं बुद्धिमानों की बुद्धि, तेजस्वियों का तेज हूँ ॥१०॥

मैं बलवानों का आसक्ति, कामनारहित बल।

सब भूतों में धर्मानुकूल, शास्त्र विहित काम हूँ ॥११॥

सत रज तम से उत्पन्न, सब भाव मुझ से होते।

पर वास्तव में उनमें मैं, और वे मुझमें नहीं ॥१२॥

तीन गुणों से उत्पन्न, भावों से संसार मोहित।

त्रिगुणातीत मुझ अविनाशी, को न कोई जानता ॥१३॥

मेरी यह अलौकिक, त्रिगुणमयी माया बड़ी दुस्तर।

जो निरंतर मुझे भजें, माया पार कर पाते ॥१४॥

आसुरी स्वभाव वाले मूढ़, माया जिनका ज्ञान हरे।

ऐसे नीच दूषित कर्म वाले, न कभी मुझे भजें ॥१५॥

उत्तम कर वाले अथार्थी, आर्त जिज्ञासु ज्ञानी।

यह चार प्रकार के भक्त, सदा मुझे हैं भजते ॥१६॥

मुझमें नित्यस्थित अनन्य प्रेमी, ज्ञानी भक्त अति विशिष्ट।

मेरे तत्वज्ञानी को मैं प्रिय, वह ज्ञानी मेरा प्रिय ॥१७॥

ये सभी भक्त उदार, किंतु ज्ञानी तो मेरा स्वरुप।

मुझमें मन बुद्धि वाला, उत्तम गति मुझमें स्थित ॥१८॥

तत्वज्ञानी बहुत जन्मों बाद, सब कुछ वासुदेव है।

ऐसा जो मुझे भजे, वह महात्मा दुर्लभ होता ॥१९॥

भोगकामना ने ज्ञान हरा, निज स्वभाव से प्रेरित।

उन नियमों को कर धारण, अन्य देव करे पूजित ॥२०॥

सकाम भक्त जिस देवता, को श्रद्धा से पूजता।

उस भक्त की श्रद्धा, मैं उसी में स्थिर करूँ ॥२१॥

उस श्रद्धा से युक्त पुरुष, देवता का पूजन करे।

देव से मेरे द्वारा विधित, इच्छित भोग निश्चय पाते ॥२२॥

किंतु जब मूढ़ जनों का, वह फल नाशवान होता।

देव पूजक देव पाते, मेरे भक्त मुझे पाते ॥२३॥

मूढ़ जन मेरा अविनाशी, परम भाव न जानते।

मुझ सच्चिनान्द परमात्मा को, मनुष्य मात्र ही मानते ॥२४॥

मैं योगमाया में छिपा, सबके प्रत्यक्ष न होता।

वे मूढ़ मुझ जन्मरहित, अविनाशी को न जानते ॥२५॥

पूर्व वर्तमान भविष्य में, होने वाले सब भूत।

मैं जानता पर श्रद्धारहित, कोई न मुझे जाने ॥२६॥

इच्छा-द्वेष उत्पन्न, सुख दुख द्वन्द रूप मोह से।

सब प्राणी संसार में, अत्यंत अज्ञता प्राप्त हो रहे ॥२७॥

जिन निष्कर्म कर्म वालों के, सब पाप नष्ट हो गये।

राग द्वेष जनित मोह मुक्त, दृढ़ भक्त सदा मुझे भेजें ॥२८॥

जरा मरण छूटने को, मेरे शरणागत यत्न करें।

वे उस ब्रह्म सम्पूर्ण अध्यात्म, कर्म रहस्य जानते ॥२९॥

जो अधिभूत अधिदैव, अधियज्ञ सहित अंतकाल में।

मुझे जानते वे युक्तचित्त, नर मुझे प्राप्त होते ॥३०॥

**॥इति सप्तमोऽध्यायः॥**

**हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत्**

# ८) अक्षरब्रह्मयोगः

**अर्जुन उवाच**

वह ब्रह्मा क्या पुरुषोत्तम, अध्यात्म क्या कर्म क्या।

अधिभूत नाम से क्या कहा, अधिदैव किसे कहते ॥१॥

यहाँ अधियज्ञ कौन, इस शरीर में कैसे रहते।

युक्त चित्त योगी तुम्हें, अंत समय कैसे पाते ॥२॥

**श्रीभगवान उवाच**

परम अक्षर ब्रह्म है, स्व स्वरुप जीवात्मा अध्यात्म।

भूतों के भाव उत्पन्न करे, वह त्याग कर्म कहलाता ॥३॥

क्षर धर्म पदार्थ अधिभूत, प्रजापति अधिदैव हैं।

इस शरीर में अन्तर्यामी, मैं वासुदेव ही अधियज्ञ हूँ ॥४॥

अंत काल में मुझे स्मरण कर, जो यह शरीर त्यागना।

मेरे स्वरुप को पाता, न इसमें कुछ संशय ॥५॥

अंत काल में जो भाव, स्मरण कर शरीर त्यागता।

सदा उस भाव से भावित, उसी भाव को पाता ॥६॥

सब समय मेरा स्मरण, और युद्ध भी कर अर्जुन।

मुझे अर्पित मन बुद्धि युक्त, निश्चय मुझे प्राप्त होगा ॥७॥

ईश्वर में ध्यानयोग युक्त, एकाग्र चित्त चिंतन कर।

योगी परम प्रकाशरूप, दिव्य पुरुष ही पाता ॥८॥

जो सर्वज्ञ अनादि, अन्तर्यामी सूक्ष्मतम।

सब के धारक-पोषक, अचिन्तयरूप-सच्चिदानंद।

सूर्य सदृश नित्य चेतन, प्रकाशरूप अविद्या से परे।

शुद्ध परमेश्वर का, सदा स्मरण करे ॥९॥

वह भक्त अंतकाल में, योगबल से भृकुटि मध्य।

कर प्राण स्थापित, निश्चल मन से स्मरण कर।

उस दिव्यस्वरूप परमपुरुष, परमात्मा को ही पाता ॥१०॥

वेद विशारद जिस सच्चिदानंद, परमपद को अविनाशी कहें।

आसक्ति रहित यत्नशील सन्यासी, महात्मा जिसमें प्रवेश करें।

जिस परमपद प्राप्ति हेतु, ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य आचरण करे।

वह परमपद मैं तेरे लिए, संक्षेप में कहता हूँ ॥११॥

सब इन्द्रिय द्वार रोक, मन ह्रदय में स्थिर कर।

प्राण मस्तक में स्थापित कर, परमात्म योग धारण स्थित ॥१२॥

जो पुरुष ॐ एक अक्षर रूप, ब्रह्म को उच्चारण कर।

मेरा चिंतन कर शरीर त्यागता, वह परमगति पाता ॥१३॥

जो मुझमें अनन्यचित्त हो, सदा मेरा स्मरण करे।

मुझमें निरंतर युक्त योगी को, मैं सहज प्राप्त होता ॥१४॥

परम सिद्धि प्राप्त महात्मा, मुझको प्राप्त होकर।

दुखों के घर क्षणभंगुर, पुनर्जन्म न प्राप्त होते ॥१५॥

ब्रह्मलोक पर्यन्त हे अर्जुन, सब लोक पुनरावर्ती होते।

पर हे कुन्तीपुत्र मुझे, प्राप्त हो पुनर्जन्म न होता ॥१६॥

ब्रह्म का दिन हजार चतुर्युगी, रात्रि हजार चतुर्युगी होती।

जो योगी यह तत्व जानते, वे ही कालतत्व के ज्ञाता ॥१७॥

सब भूत ब्रह्मदिन प्रवेशकाल में, अव्यक्त से उत्पन्न होते।

ब्रह्मरात्रि प्रवेशकाल में, अव्यक्त में ही लीन होते ॥१८॥

वही यह भूतसमुदाय पार्थ, उत्पन्न हो प्रकृतिवश।

रात्रि प्रवेशकाल में लीन हो, दिन प्रवेशकाल में उत्पन्न होता ॥१९॥

उस अव्यक्त से अति परे, दूसरा जो सनातन अव्यक्त भाव।

वह दिव्यपुरुष सब भूत, नष्ट हुये न नष्ट होता ॥२०॥

अव्यक्त अक्षर नाम से कहा, वही परमगति कहलाता।

जिसे पा योगी न लौटते, वही मेरा परमधाम ॥२१॥

जिसके अंतर्गत सर्वभूत, जिससे सब जग परिपूर्ण।

वह सनातन परमपुरुष, अनन्य भक्ति से प्राप्त होता ॥२२॥

जिस काल में शरीर त्याग, योगी वापस न लौटते।

जिस काल में गये लौटते, दोनों मार्ग तुम्हे बताता ॥२३॥

ज्योतिर्मय अग्नि-दिवस, शुक्लपक्ष उत्तरायण छः मास।

जिस मार्ग के अभिमानी देव, उस से गये योगी ब्रह्म पाते ॥२४॥

धूम-रात्रि कृष्णपक्ष, दक्षिणायन छः मास जिस मार्ग।

के अभिमानी देव, चंद्र ज्योति पा स्वर्ग से लौटता ॥२५॥

शुक्ल-कृष्ण देवयान-पितृयान, जग के दो मार्ग सनातन।

एक में गया परमगति पाता, दूसरा जन्म-मृत्यु पाता ॥२६॥

ऐसे दोनों मार्ग जान, न कोई योगी मोहित होता।

अतः सब काल में अर्जुन, मेरी प्राप्ति हेतु साधन कर ॥२७॥

योगी यह रहस्य ज्ञान वेदपाठ, यज्ञ तप दान का पुण्यफल।

निश्चय उल्लंघन कर, सनातन परमपद पाता ॥२८॥

**॥इति अष्ठमोऽध्यायः॥**

**हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत् ~ हरिः ॐ तत्सत्**

# शिष्य-गुरु संवाद

**शिष्य :-** ब्रह्माण्ड, जीव और ब्रह्म में क्या भेद है?  
**गुरु :-** ब्रह्माण्ड स्थूल है, जीव सूक्ष्म है, ब्रह्म सूक्ष्मतम है।

**शिष्य :-** एक अखंड, निराकार, सच्चिदानंद ब्रह्म से स्थूल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे संभव है?  
**गुरु :-** सर्वव्यापी ब्रह्म में कल्पना से स्थूल ब्रह्माण्ड का आरोपण ही समझना चाहिए।

**शिष्य :-** ब्रह्माण्ड की कल्पना किसने की?  
**गुरु :-** स्वयं ब्रह्म ने।

**शिष्य :-** जीव का स्वरुप क्या है?  
**गुरु :-** जीव पंचकोषीय है - अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय।

**शिष्य :-** जीवात्मा की उत्पत्ति कैसे हुयी?  
**गुरु :-** चैतन्य ब्रह्म में बुद्धि द्वारा जीव भाव की कल्पना ही जीवात्मा है।

**शिष्य :-** जीव कर्म करने और फल भोगने में स्वतंत्र है या परतंत्र?  
**गुरु :-** विज्ञानमय कोष में ही अहंकार बुद्धि द्वारा जीव सुख-दुःख का कर्त्ता-भोक्ता बनता है।

**शिष्य :-** संसार की उत्पत्ति और विनाश कहाँ होता है?  
**गुरु :-** अति बलवाल मनोमय कोष में ही मन की वृत्तियों द्वारा संसार की उत्पत्ति-विनाश होता है।

**शिष्य :-** जीव और परमात्मा के लक्षण क्या हैं?  
**गुरु :-** जीव के लक्षण हैं: -भोक्तृत्व, राग-द्वेष। परमात्मा के: सत्-चित्-आनंद।

**शिष्य :-** सगुण-निगुण उपासना में क्या भेद है?  
**गुरु :-** संसार रूपी दर्पण में ईश्वर के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार करना सगुण उपासना है। संसार को मिथ्या मानकर निज आत्मा का निज में साक्षात्कार करना ही निर्गुण उपासना है।

**शिष्य :-** नास्तिक कौन है?  
**गुरु :-** जो आत्मा को सत्य न मानकर केवल संसार को ही सत्य मानता है, वह ही नास्तिक है।

**शिष्य :-** आत्मा का आकार क्या है?  
**गुरु :-** आत्मा अणु से भी अणु है और महान से भी महान।

**शिष्य :-** आत्मा कहाँ रहती है?  
**गुरु :-** आत्मा सभी प्राणियों में हृदय देश में रहती है।

**शिष्य :-** आत्मा का कार्य क्या है?  
**गुरु :-** आत्मा चक्षु का भी चक्षु, कान का भी कान, वाणी की भी वाणी, प्राण का भी प्राण है। सब पदार्थ और क्रियाओं से निर्लिप्त वह सब का साक्षी और प्रकाशक है।

**शिष्य :-** आत्मा का माप क्या है?  
**गुरु :-** ह्रदय में ईस्वर का प्रकाश ही आत्मा का माप है।

**शिष्य :-** मृत्यु के उपरान्त आत्मा का क्या होता है?  
**गुरु :-** संचित कर्मों, वासनाओं, राग-द्वेष के अनुरूप; कर्म-फल-भोग हेतु; आत्मा का प्रकाश विभक्त होकर स्थावर से लेकर जंगम, कीट-पतंग से लेकर मनुष्य योनि पर्यन्त पुनः जन्म लेता है।

**शिष्य :-** आत्मा की प्राप्ति किस विद्या से होती है?  
**गुरु :-** संसार उपयोगी सभी विद्या अपरा या अविद्या कहलाती हैं। आत्म-ज्ञान का हेतु परा या ब्रह्मविद्या ही है।

**शिष्य :-** ब्रह्मविद्या का अधिकारी कौन है?  
**गुरु :-** सतो गुण में स्थित ब्राह्मण ही ब्रह्म विद्या का अधिकारी है।

**शिष्य :-** ब्रह्म विद्या का फल कब मिलता है?  
**गुरु :-** पुत्र-वित्त-लोक एषणाओं से मुक्त, अनायास प्राप्त हुई भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले सन्यासिओं को ही ब्रह्म विद्या का फल मिलता है।

**शिष्य :-** जीवनमुक्त की पहचान क्या है?  
**गुरु :-** सभी इच्छाओं का समूल नाश होने पर जीवन मुक्त सब समय शांत रूप से आत्मा में स्थित रह परमात्मा का साक्षात्कार करता है।

**पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।  
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥**

**शिष्य :-** इस मन्त्र में पूर्ण, अद:, इदं पदों से क्या अर्थ है?  
**गुरु :-** पूर्ण परमब्रह्म् का सूचक है। अधः कार्यब्रह्म का सूचक है और इदं जीवात्मा का सूचक है।

**शिष्य :-** परमब्रह्म कौन है?  
**गुरु :-** तुरीयातीत अवस्था में स्तिथ निर्गुण-निराकार सच्चिदानंदघन परमात्मा ही परमब्रह्म है। पारमार्थिक सत्ता (निर्विकल्प समाधी)

**शिष्य :-** कार्यब्रह्म कौन है?  
**गुरु :-** सगुण-साकार ईस्वर ही कार्यब्रह्म है। यह ही सृष्टि का निमित्त-उपादान कारण है और तुरिया अवस्था का प्रतीक है। प्रातिभासिक सत्ता (सविकल्प समाधी)

**शिष्य :-** एक ही ईस्वर अनंत जीवों में कैसे भासता है?  
**गुरु :-** एक ही अखंड सूर्य से अनेक रश्मियाँ निकल कर अनेक जीवों की जीवात्मा के रूप में भासती हैं।

**शिष्य :-** जीवात्मा सुख-दुख का कैसे अनुभव करता है?  
**गुरु :-** प्रकृति और उसके गुणों के संयोग से।

**शिष्य :-** जीव की क्या अवस्थायें हैं?  
**गुरु :-** जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति।

**शिष्य :-** सुख-दुख का अनुभव कौन सी अवस्था में होता है?  
**गुरु :-** स्वप्न-जागृत अवस्था में।

**शिष्य :-** आनंद का अनुभव कब होता है?  
**गुरु :-** सुषुप्ति और तुरीय अवस्था में।

**शिष्य :-** अखंड आनंद की प्राप्ति कब होती है?  
**गुरु :-** तुरीयातीत अवस्था में।

**शिष्य :-** वैकुंठ-गोलोक आदि धाम कैसे मिलते हैं?  
**गुरु :-** ईस्वर की भक्ति से।

**शिष्य :-** कैवल्य मुक्ति कैसे मिलती है?  
**गुरु :-** ब्रह्मज्ञान से।

**शिष्य :-** मुक्ति का उपाय क्या है?  
**गुरु :-** सुख-दुख के हेतु संसार से मन हटा कर ईस्वर में मन लगाना। पुरानी सांसारिक स्मृतियों को छोड़ केवल ईस्वर का चिंतन करना।

**श्रीराम :-** हे मुनीश्वर!

विषय भोग होते दुःखरूप-नश्वर।  
जल बोधाग्नि में चित्त हुआ निर्मल-महान॥

ज्यों काल-संग नीम-गिलोय होते जाते कड़वे परस्पर।  
त्यों पा वैराग्य संसार लगता उत्तरोत्तर कटु-निष्प्राण॥

न करता जीवन स्वागत न ही मृत्यु-अभिनन्दन।  
बस चाहता एकांत-शान्ति न स्त्री-धन सुरवंदन ॥

ज्यों गज खुर-प्रहार से कोमल-कमल कुचलता।  
त्यों कामदेव मानवती कामिनियों से मानव-मन मथता॥

अज्ञान-वन में फैल रहे विषय-भोग के जाल।  
मनुज-मन में लिपट रहे भय-शोक-वासनाओं के व्याल॥

कहो उपाय मानव पा जाये संसार पंक में कमल-अभय।  
जीवन-मरण रोग-शोक से हो जाये सदा निर्भय॥

नश्वर संसार से मोह-निवृत्ति को उपदेश दें मुनीश्वर।  
गुरुजन सन्मुख कर विनती यूँ चुप हुये रामेश्वर॥

**श्री वशिष्ठ :-**

तज विषय-भोग माया-मोह तुम हो वैरागी परमवीर।  
फिर भी कहते हो तो सुनो हे सर्वज्ञ-रघुवीर॥

सम्पूर्ण जगत में वह एक अखंड-चिन्मय परम-पुरुष-परमात्मा ही है समाया।  
जीता जिसने प्रयत्न-पौरुष से प्रारब्ध को उसने ही है यह परम-तत्व पाया॥

पुण्य-कर्म और सत्संग ही संसार-गड्ढ् से निकालता।  
क्षण-भंगुर मिथ्या-जग और भव-तम-भ्रम से उबारता॥

नित नूतन उत्साह से करते रहो पुण्य-पौरुष-प्रयत्न।  
सब भव-भय मिट जायेंगे पा जाओगे जीवन-मुक्ति-रत्न॥

**प्रश्न :-** संसार क्या है?  
**उत्तर :-** सर्व शक्तिशाली "मन" - इन्द्रियों एवं उनके विषयों के संयोग से जिस दृश्य-प्रपंच की रचना करता है - उसे संसार या जगत कहते हैं।

**प्रश्न :-** संसार को कौन सी दो भूख चलायमान रखती हैं?  
**उत्तर :-** पेट की और उसके नीचे की भूख।

**प्रश्न :-** संसार नश्वर क्यों है?  
**उत्तर :-** जिन इन्द्रिय, उनके विषयों और मन के कारण संसार प्रपंच सत्य प्रतीत होता है, आयु के साथ उनका ह्रास होता है, अतः संसार का भी नाश होता है।

**प्रश्न :-** संसार में दुःख क्यों है?  
**उत्तर :-** राग-द्वेष, आसक्ति और इच्छापूर्ति न होना ही दुःख का कारण है।

**प्रश्न :-** हम संसार मैं क्यों आते हैं?  
**उत्तर :-** माता-पिता के कारण-शरीर में छिपी वासनाओं के कारण हम जन्म लेकर अपने पूर्व जन्मों के प्रारब्ध और संचित कर्मों का भोग करते हैं।

**प्रश्न :-** जीवात्मा क्या है ?  
**उत्तर :-** संसार-प्रपंच रुपी दर्पण में परमात्मा के प्रतिबिम्ब तो जीवात्मा कहते हैं।

**प्रश्न :-** वासना क्या है?  
**उत्तर :-** पूर्व मैं किये गए कर्म मन-बुद्धि पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। उनकी स्मृति हमें बार-बार कर्मों को करने के लिये प्रेरित करती है (नशा, मैथुन, आदि)। आदत के इस प्रबल वेग द्वारा पुनः पुनः पूर्व कर्मों में लिप्त होने की प्रवृति को ही वासना कहते हैं।

**प्रश्न :-** वासनाओं से मुक्ति कैसे मिलती है?  
**उत्तर :-** परमात्मा के चिंतन, आत्म-साक्षात्कार और भक्ति से ही वासना रुपी दलदल से मुक्ति मिलती है।

**प्रश्न :-** रामायण का उद्देश्य क्या है?  
**उत्तर :-** वैराग्य संदीपन द्वारा मोक्ष की प्राप्ति।

**प्रश्न :-** राम किसके प्रतीक हैं?  
**उत्तर :-** त्रिगुणमयी (सत्-रज-तम) प्रकति को जीतने वाले, त्रिगुणातीत, स्वप्न-सुषुप्ति-जाग्रत के परे चतुर्थ (तुरीय) योगावस्था में रहने वाले, जीवन्मुक्त श्रीराम हैं।

**प्रश्न :-** सीताजी किसकी प्रतीक हैं?  
**उत्तर :-** जब त्रिगुणमयी प्रकति राम-रुपी पुरुष के आधीन होकर कल्याणकारी हो जाती हैं, तो वह सीता कहलाती हैं।

**प्रश्न :-** गीता में अर्जुन, कृष्ण, रथ और घोड़े किसका प्रतीक हैं?  
**उत्तर :-** शरीर रथ है, इन्द्रियां घोड़े हैं, मन लगाम है और बुद्धि सारथी है। अर्जुन रथ पर सवार जीवात्मा है। जब बुद्धि मोहित हो जाती है तो परमात्मा रुपी कृष्ण सारथी बनकर जीवात्मा को सही दिशा प्रदान करते हैं।

# दोहावली

सतसंग करि सो नर नार, जिन कै माया सताई।  
रतनावली दीन सीख तुलसी, तुलसी पायो रघुराई ॥

सत्संग सब जतनन को फल, सारे साधन फूल।  
साधुसंग सब कलिमल हरता, बात न जाना भूल ॥१॥

शंकर जी सहस नाम, राम नाम एक।  
रात-दिन जपो राम नाम, मस्तक घुटने टेक ॥२॥

रामनाम महँ 'रा' भानु, 'म' हिम समान।  
दुष्ट दलन-भगत तरन, आर न दूजा आन ॥३॥

ब्रह्म राम तें राम, बड़ बार दायक बड़ दानि।  
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जिय जानि ॥४॥

राम नाम हो कलपनरू, कलि कल्यान निवासु।  
जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसीदास ॥५॥

सगुन-अगुन भवसागर घाट, नाम खेवनहारा।  
सतसंग नाव चढ़ पार करन, कबहुँ न कोई हारा ॥६॥

रामचरित लिखौ संकर, मानस दियौ छिपाई।  
उमा संशय कियो राम पर, मानस दियौ डुबाई ॥७॥

रामचरित विशाल सरोवर, चार सुन्दर घाट।  
उमा-शिव, भुसुण्ड-गरुण, याज्ञ-द्वाज, तुलसी-संत संवाद ॥८॥

विषय-सनल जलत मन, गयौ मानस नहाई।  
राम-रतन-धन मं जायेगा, दुख-दोष-दारिद्र मिट जाई ॥९॥

मुनि वसिष्ठ कह गये राम से, जग केवल भ्रम-स्वप्न-संकल्प।  
ब्रह्म सत्य यह लोगों, मत समझो कोरी गल्प ॥१०॥

जहाँ राम वहाँ काम नहीं, जहाँ काम नहीं राम।  
भज मन हरदम राम नाम, तज दूजे सब काम ॥११॥

बहु दुर्गम देश घुम्यो, छोट-बड़ों करी सेवकाई।  
कागा रोटी चुरा खायो, तृष्णा तबहूँ न मिट पाई ॥

सागर पार कियो धन कू, पहाड़ तोड़े रतन आस।  
शमशान बैठ मंतर पढ़े, तृष्णा भयो न हरास ॥

धूर्तन कटु वचन सहे, ह्रदय रोये मुख हास।  
मूर्खन चरन बंदगी करी, तृष्णा भयो न हरास ॥

जीवन कोमल ओस समान, कब फिसले नहि ज्ञान।  
भोग भोग यौवन ढला, वासना भयी जवान ॥

भिक्षा मांग भोजन करयो, जंगल कियो निवास।  
फटा कौपीन तन ढांक्यो, माया न टूटा पास ॥

पतंगा लौ महँ गिरे, मीन फँसे काँटा माहि।  
माया बड़ी बलवान है, संसार न छूटन पाहि ॥

हिमालय गुफा खत्म भयीं, फल-फूल न जंगल माहिं।  
नदी-झरने सब सूख गये, जो मूर्खन दर माँगन जाहिं ॥

भोग में रोग भय, ऊँचों जनम जात गँवाई।  
जीवन महँ मृत्यु भय, जीवनमुक्त कछु भय नाईं ॥

जनम शिशु को लियो, यौवन वासना महँ लुटायो।  
वृद्ध भयो यम पुकारयो, व्यर्थ जीवन गँवायो ॥

तुम राजा हम फकीर, तुम धनबल हम ज्ञान।  
हम तुम महँ भेद बड़ो, न करिहैं तुम्हहि प्रणाम ॥

बेद-पुरान शोधि शोधि, यज्ञ धृत आहुति चढाई।  
कछु ते न भवसागर तरयो, राम नाम भजो सब भाई ॥

॥इति मालाएकादशम् समाप्तम् ॥

कागा काको का हर लेता, कोयल काको का देती।  
अमृतवानी कूक-कूक कर, आमन में मिसरी भरती ॥

शब्द ब्रह्म है वानी संसार, कविता बन बही गंगा धार।  
आत्मा-स्वर जिह्वा लावें, निर्मल मन रामचरित गावें ॥

बानी बनावै शत्रु-मित्र, बानी रचै सब संसार।  
अंधे बाप को अँधा बेटा, महाभारत हेतु वानी-द्रौपदी-नार ॥

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।  
औरन कू सीतल करै, आपहुँ सीतल होय ॥

शब्द-दीप-अवली बानी, शब्दावली शोभै ज्यों दीपावली।  
प्रेम स्नेह भरो दीपों में, हरो जन-मन-तम भारी ॥

सरस्वती वानी की देवी, श्वेत पद्मासन वीणा हाथ।  
निसि-दिन पूजौ वाग्देवी, जो चाहो विद्या हो साथ ॥

हरदम रखो वानी-संयम, है यह दुधारी तलवार।  
राम-नाम भवबंधन काटे, क्रोध बिगाड़े सब त्यौहार ॥

कर्कश वानी बने गारी, मीठी वानी संगीत।  
नाम-जाप बने भजन, भयो तुलसी भवतीत ॥

खीरा मुख से काटिये, मलियत नोन लगाये।  
रहिमन कड़वे मुखन कू, चहियत यही सजाय ॥

शब्द-पुष्प पिरो प्रेम-धागे, करें वानी-माला तैयार।  
चढ़ावें वाग्देवी चरनन में, करें निज हिये ज्ञान प्रसार ॥

एकादश दोहों की ये माला, करें माँ शारदा सिंगार।  
जो ध्यावै जस पावै, मिटै राग-द्वेष-क्लेष विकार ॥

**साधक मानस संजीवनी**

राम त्रिगुणातीत हैं, तुरीय अवस्था के योगी।  
हिये बसावें राम को, निश्चय साधना पूरी होगी ॥१॥

जनम-जनम तप कियौ, मनु-सतरूपा की नाईं।  
यज्ञ विषय-सुख होम भयौ, तब राम कृपा हिये छाई ॥२॥

राम तुरीय त्रिगुणातीत, लखन जागृत रजोगुणी।  
भरत सतोगुणी सुषुप्त, शत्रुघन स्वप्न तमोगुणी ॥३॥

विश्वामित्र ले गये राम-लखन, करने असुर संहार।  
तुरीय-जागृत जब मिलें, मिटे अंतःकरण विकार ॥४॥

राम निर्विकार ब्रह्मचारी, किया शंकर धनुष संधान।  
गृहस्थ के पहले ब्रह्मचर्य, यह वेद का विधान ॥५॥

दस सहस्र राजन न हिला, एक राम धनुष उठा पाये।  
मनोवृत्ति निरोध किया जिसने, जग में सब कर पाये ॥६॥

सीता कल्याणमयी प्रकृति, दिया राम पग पग साथ।  
राम लीला अंत भयी, समाई पृथ्वी कह हे नाथ ॥७॥

दशरथ पहुँचे चौथापन, दे राम राज चलें वन।  
राम जनम हिये भयो, अब संसार छोड़ हे मन ॥८॥

अहल्या-रात्रि गौतम-चंद्र, इंद्र सूर्य भगवान।  
सूर्य रात्रि कर लियो, राम किये अहल्या कल्यान ॥९॥

हनुमान अखंड ब्रह्मचारी, सहज अहम् सागर कियौ पार।  
पूँछ लपेट लंका जराई, मिटे सब अंतःकरण विकार ॥१०॥

योग से मन निरोध करें, बनावें पत्थर के समान।  
ता ऊपर राम नाम लिखें, अहं सागर तरें ज्यों हनुमान ॥११॥

**बापू**

द्वय-दिवस दसम-मास, प्रगटे करने भारत निवास।  
भारतमाता के दो लाल, लालबहादुर-मोहनदास ॥

भोग भोगने आते सब, तुम आये करने खोज।  
जग-माटी के पुतले सब, तुम मन-आत्मा के मनोज ॥

जड़ता-हिंसा-स्पर्धा में भर, चेतना-अहिंसा-नम्र ओज।  
पशुता का पंकज बना दिया, तुमने मानवता का मनोज ॥

ब्रिटिश शासन था कंस, भारतमाता बेड़ियों से बाँधी।  
कृष्णावतार प्रगट भये कारा में, कंस-वध-हेतु युगपुरुष गांधी ॥

उर-चरखे कात सूक्ष्म, युग-युग विषय जनित विषाद।  
गुंजित किया गगन देश का, भर आत्मा का निवाद ॥

रंग भर खद्दर धागों में, आशा-उत्साह-उल्लास।  
मानव-कला सूत्रधार तुम, अंत किया यंत्र-जड़-विनाश ॥

जन विज्ञान-मूढ़ प्रकृति-काम, तुम मुक्त-पुरुष जपो राम नाम।  
मिथ्या जड़-बन्धन सत्य राम, जय ज्ञान-ज्योति तुमको प्रणाम ॥

तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल, हे चिर-पुराण हे चिर-नवीन।  
तुम पूर्ण इकाई जीवन की, जिसमें असार भव-शून्य लीन ॥

हाड़-मांस के पुतले बापू, घड़ी-चश्मा-धोती सिंगार।  
सत्य-अहिंसा-आत्मबल से, लूटी देश-विदेश ख्याति अपार ॥

साबरमती के संत बापू, राम पद-कमल दास।  
सत्य-अहिंसा-वैराग्य से, किया ब्रिटिश राज विनाश ॥

रघुपति राघव राजाराम, पतित-पावन सीताराम।  
ईस्वर-अल्लाह तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान ॥